JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय राष्ट्रवाद के लिए चुनौती : सांप्रदायिक समस्या।

मो0 तौकीर हाशमी
सहायक प्राचार्य (इतिहास)
एच0 पी0 एस0 कॉलेज, निर्मली, सुपौल (बिहार)
पिन कोड – 847452

शोध–सारांश (Abstract)

प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य भारतीय राष्ट्रवाद के लिए चुनौती के रुप में उभरी सांप्रदायिक समस्या के इतिहास को दिखाना है। भारतीय राष्ट्रवाद का उदय 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। भारतीय मध्यकालीन समाज का रुपांतरण एक विदेशी ब्रिटिश के द्वारा हो रहा था और यह बदलाव उसी के हित के अनुकूल था। इसलिए यह रुपांतरण अधूरा रहा, जिस कारण भारत एक राष्ट्र के रुप में ब्रिटेन या फ्रांस के जैसा समन्वित नहीं हो सका। ब्रिटिश काल में भारतीय समाज के अंतर्गत जिन प्रगतिशील तत्वों का उदय हुआ, उनके स्वच्छंद सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति पर ब्रिटिश सरकार ने पुरानी प्रतिक्रियावादी संस्थाओं के माध्यम से जो प्रतिबंध लगाया, उस प्रतिबंध के खिलाफ प्रगतिशील तत्वों का संघर्ष हुआ। इस संघर्ष के परिणामस्वरुप भारतीय राष्ट्रवाद का उदय हुआ। हालांकि राष्ट्रवाद के बीच सांप्रदायिक चुनौती भी उभरी। आधुनिक भारत के इतिहास में सांप्रदायिक समस्या को हिन्दू समुदाय और मुस्लिम समुदाय के बीच संबंधों का विश्लेषण के रुप में देखा जाता है। सांप्रदायिकता का यह विकसित रुप स्वतंत्रता से तीन दशक पूर्व इतना गहरा हो चुका था कि अंततः भारत का विभाजन धर्म के आधार पर दो स्वतंत्र राष्ट्रों के रुप में हुआ। यह सांप्रदायिक चुनौती ब्रिटिश पूंजीवादी व्यवस्था की "फूट डालो शासन करो" की नीति और सामाजिक–आर्थिक असमानता के कारण उभरी, जिसे धार्मिक नेतृत्व की महत्वकांक्षा ने और अधिक गंभीर बना दिया।

कूट शब्द : राष्ट्रवाद, सांप्रदायिकता, इंडियन नेशनल कांग्रेस, मुस्लिम लीग, पृथक निर्वाचन।

परिचय :

राष्ट्र, ऐतिहासिक रुप से विकसित ऐसा जनसमुदाय है, जो एक भाषा का उपयोग करता है और जिसका अपना अलग निश्चित भू–भाग होता है। इनका एक समान संयुक्त आर्थिक जीवन और अपनी सम्मिलित मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक संरचना है। भारतीय मुसलमानों की अपनी कोई विशिष्ठ भाषा, अलग आर्थिक जीवन या अलग कोई भू–भाग नहीं था। ये सारे देश में फैले हुए थे। जिन प्रांतों में रहते थे, वहीं की भाषा बोलते थे और वहीं की आर्थिक गतिविधियों के अनुरुप अपना जीवन गुजारते थे। ये अलग कोई राष्ट्रिक इकाई नहीं थे। ये लोग मात्र धर्म के सूत्र में बंधे थे।

सांप्रदायिक विचारधारा का जन्म उस समय होने लगता है, जब एक संप्रदाय या धर्म को मानने वाले लोग यह विश्वास करने लगते हैं कि उनके सभी हित (यानी– राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक हित) एक जैसे होते हैं और उनके सभी हित अन्य किसी भी धर्म को मानने वालों के हित से अलग हैं। यही सांप्रदायिकता अपने उग्र रुप में तब होता है जब यह मान लिया जाता है कि अलग–अलग संप्रदाय या धर्मों के हित एक–दूसरे के विरोधी होते हैं।[1] मुस्लिम संप्रदाय में पेशेवर और मध्यम वर्ग का उदय हिंदू संप्रदाय की तुलना में बाद में हुआ। हिंदू पहले से ही सरकारी नौकरीयों और आर्थिक गतिविधियों वाले स्थान पर आसीन थे। मुसलमानों ने अपने हितों की लड़ाई में

1. चंद्र, बिपिन एवं अन्य : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, दिल्ली, 2015 (29वां संस्करण), पृ. 383 से लिया गया।

हिंदुओं को प्रतियोगी के रुप में देखा और विभिन्न भागों के पारस्परिक विरोध को सांप्रदायिकता का नाम दिया। सांप्रदायिकता के विकास में अंग्रेजों का कम योगदान नहीं था। उन्होंने सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व, सांप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र और संम्राज्यवादी हित में प्रांतों का पुनर्गठन आदि तरीकों से अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए राजनैतिक संतुलन की रणनीति अपनाई थी। इससे भी देश में सांप्रदायवाद बढ़ा और स्वतंत्रता के लिए जनता का संयुक्त राष्ट्रीय आंदोलन का विकास अवरुद्ध हुआ।[2]

1857 का विद्रोह और मुसलमानों के प्रति शासनिक दृष्टिकोण :

ब्रिटिश शासन के साथ सामंजस्य बनाने को लेकर मुस्लिम समाज में दो प्रतिक्रिया उभर कर सामने आई। एक वर्ग था जो किसी भी स्थिति में ब्रिटिश शासन के साथ समझौता करने के पक्ष में नहीं था और दूसरा वर्ग था जो मुस्लिम समुदाय के समूचित विकास के लिए पश्चिमी संस्कृति और ब्रिटिश शासन को महत्वपूर्ण माना। पहले वर्ग के अंतर्गत वहाबी आंदोलन को रखा जा सकता है। भारतीय मुसलमानों का पहला संगठित आंदोलन वहाबी आंदोलन था। यह धर्म सुधार आंदोलन के रुप में शुरु हुआ, लेकिन बाद में इसमें राजनैतिक, सामाजिक और और आर्थिक तत्व भी शामिल हो गए।[3]

मुसलिम समुदाय के प्रति ब्रिटिश शासन की प्रतिक्रिया 1857 के विद्रोह के समय आई, जब ब्रिटिश अधिकारियों की नजर में भारत का प्रत्येक मुसलमान विद्रोही था। उनका मानना था कि 1857 का विद्रोह पहले एक सैनिक विद्रोह था, जो मुसलिम नेतृत्व और षडयंत्र के बाद राजनैतिक हो गया। बहादुर शाह जफर को हिन्दुस्तान का बादशाह घोषित किया जाना, अवध में बेगम हजरत महल का नेतृत्व, रुहेलखंड में खान बहादुर खान द्वारा खुद को नवाब–ए–नाजिम घोषित किया जाना आदि घटनाएं ब्रिटिश शासन के लिए मुसलिमों के प्रति ऐसी सोच में सहायक बनी। विद्रोह के पहले ही 1843 में लॉर्ड एलनबरो ने कहा था कि "मैं इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता कि मुसलमान मूलतः हमारे शत्रु हैं और हमें हिन्दुओं को मिलाकर रखने की नीति अपनानी चाहिए।" 1857 के विद्रोह में मुसलमानों ने हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक प्रमुख रुप से भाग लिया था, इसलिए ब्रिटिश सरकार ने भारतीय मुसलमानों का भरोसा नहीं किया और उनकी उपेक्षा करने की नीति अपनाई। विद्रोह के दमन के कुछ ही दिनों बाद लॉर्ड एलिफिंस्टन ने कहा– "लोगों में फूट डालो और इस तरह उन पर शासन करो; ऐसा पुराने रोमन लोगों का आदर्श था यही हमारा भी आदर्श है।"[4] लॉर्ड कैनिंग आम मुसलिम वर्ग के विद्रोह में शामिल होने की मान्यता को नहीं मानते थे। कैम्पबेल के अनुसार भारतीय समाज का प्रभुत्वसंपन्न और अभिजात्य वर्ग, जिनका ब्रिटिश शासन के अधीन अहित हुआ था, वही विद्रोह के लिए जिम्मेदार थे। अगर शासनिक दृष्टिकोण से मुस्लिम धार्मिक नेताओं के द्वारा ही विद्रोह का नेतृत्व किया जाना था, तो फिर यह भी देखना होगा कि हैदराबाद निजाम, रामपुर के नवाब, ढाका और करनाल के नवाब ने विद्रोह को दबाने में ब्रिटिश सत्ता का साथ भी तो दिया था।

सर सैयद अहमद खां के विचार :

सैयद अहमद खां ने यह सिद्ध किया कि पश्चिमी विचारधारा इस्लाम विरोधी नहीं है और आधुनिक शिक्षा ही इस्लाम को समझने में मददगार साबित होगी। 1857 के विद्रोह में शासन की नजर में मुसलमानों की जो छवि बनी थी, उस छवि को सुधारने के लिए उन्होंने "असबाव–ए–बगावत–हिंद" की रचना की और अपने तर्कों के द्वारा विद्रोह के लिए उत्तरदायित्व से मुसलमानों को मुक्त करने का प्रयास किया। सरकार के समर्थन और मुस्लिम मध्यम वर्ग के सहायता से सर सैयद अहमद खां ने अलीगढ़ में महम्मडन एंग्लो ओरियंटल कॉलेज की स्थापना की (1877)। यही बाद में चलकर आगे अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी बना। कॉलेज के उद्देश्यों के संबंध में लॉर्ड लिटन को दिए गए पत्र के अनुसार "मुसलमानों को ब्रिटिश ताज के सुयोग्य और उपयोगी प्रजा बनाना ही कॉलेज का लक्ष्य था।"[5]

इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना भले ही ब्रिटिश अधिकारियों के प्रोत्साहन से हुई थी, लेकिन शीघ्र ही कांग्रेस ने शासन के समक्ष ऐसी मांगें रखनी शुरु कर दीं कि दोनों के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गए। सर सैयद खां ने इंडियन नेशनल कांग्रेस का विरोध किया और मुसलमानों को इसमें शामिल होने से रोका। उनका यह निश्चित विचार था कि ब्रिटिश सरकार मुस्लिम पेशेवर वर्गों का पक्ष लेगी और उन्हें सहायता देगी। कांग्रेस विरोधी अभियान में महम्मडन एंग्लो ओरियंटल कॉलेज के प्रिंसपल थियोडर बेक का सहयोग सर सैयद खां को मिला। बेक के अनुसार इस कॉलेज का उद्देश्य मात्र शैक्षणिक नहीं है बल्कि सामाजिक और राजनीतिक भी है। इसके राजनीतिक उद्देश्यों में

2. कृष्ण, के. बी. : दि प्रॉब्लम्स ऑफ माइनरिटीज, 1939
3. स्मिथ, डब्ल्यू. सी. : मॉडर्न इस्लाम इन इंडिया, 1943
4. दत्त, आर. पी. : इंडिया टुडे (1940), पृ. 389 से अवतरण
5. ग्रैहम, जी. एफ. आई. : दि लाइफ एंड वर्क्स ऑफ सर सैयद अहमद, 1909

मुसलमानों और अंग्रेजों के बीच समझदारी को बढ़ावा देना है। कांग्रेस विरोधी राजनीतिक विचारधारा को ब्रिटेन में प्रचारित करने के लिए 1888 में "यूनाइटेड इंडियन पैट्रियोटिक एसोसिएशन" की स्थापना की गई। कांग्रेस की नीतियों का विरोध करने का एक ही उद्देश्य था कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस की मांगों को स्वीकार न करे। कांग्रेस के प्रति सर सैयद खां के विरोधात्मक रवैया होने के बावजूद कांग्रेस के अधिवेशन में मुसलमान भाग लेते रहे। तीसरे अधिवेशन की अध्यक्षता तो एक मुसलमान बदरुद्दीन तैयब जी ने किया। तैयब जी ने एक पत्र के माध्यम से सर सैयद खां को लिखा कि– वे अपने दिमाग से इस विचार को निकाल दें कि कांग्रेस मुसलमानों का अहित चाहती है। सर सैयद खां पर ऐसे किसी भी तर्क का असर नहीं पड़ा और उनका कहना था– "मैंने तथाकथित नेशनल कांग्रेस के खिलाफ यूनाइटेड इंडियन पैट्रियोटिक एसोसिएशन की स्थापना कर अपने ऊपर एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व लिया है।[6]

हिंदू धार्मिक आंदोलनों की भूमिका :

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुसलमानों के बीच जो बौद्धिक जागरुकता आई, इससे उन्हें राजनीतिक रुप से संगठित होने का अवसर मिला। लेकिन कुछ उग्र हिंदू धार्मिक आंदोलनों के कारण मुसलमानों की सामुदायिक भावनाएं सांप्रदायिक भावना में बदल गई। आर्य समाज एक ओर हिंदू कुरीतियों पर प्रहार कर रहा था वहीं दूसरी तरफ गौरक्षिणी सभा के जरिए गौ–हत्या के विरुद्ध आंदोलन भी चला रहा था। गौ–हत्या के विरुद्ध देश में कई सारे दंगे होते रहे। अरविंद घोष, विपिनचंद्र पाल, बाल गंगाधर तिलक जैसे राष्ट्रवादी नेताओं ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनमत तैयार करने के लिए जिन सनातनी हिंदू विचारों और हिंदू राजनीतिक प्रतीकों का इस्तेमाल किया (जैसे– शिवाजी महोत्सव, गणेश उत्सव आदि), उनसे भी सांप्रदायिक भावनाएं भड़की। उत्तर–पश्चिमी प्रांत में जहां पहले न्यायालय के लिए शासनिक भाषा के रुप में उर्दू का इस्तेमाल होते आ रहा था, वहां 1900 में प्रांत के ले.गवर्नर मैक्डोनेल ने बिना किसी परामर्श के हिंदी को वैकल्पिक भाषा के रुप में स्वीकार कर लिया। इससे भी हिंदू–मुस्लिम संबंध आहत हुई। 1905 का बंगाल विभाजन सांप्रदायिकता को आधार बना कर राष्ट्रवादी आंदोलन को कमजोर करने का प्रयास था। यह विभाजन लॉर्ड कर्जन की उस सोच का नतीजा था कि पूर्वी बंगाल में जहां मुसलमानों की प्रधानता थी, उसे पश्चिम बंगाल से अलग कर देने के बाद सांप्रदायिक संतुलन बना रहेगा।

मुस्लिम लीग की स्थापना और पृथक निर्वाचन की मांग :

अक्टूबर 1906 को आगा खां के नेतृत्व में मुसलमानों का एक शिष्टमंडल शिमला में वायसराय लॉर्ड मिंटो से मिला। इस शिष्टमंडल ने मुस्लिम सदस्यों के निर्वाचन के लिए पृथक निर्वाचन मंडलों की स्थापना की मांग रखी। लॉर्ड मिंटो ने मुसलमानों को एक समुदाय के रुप में, अपने प्रशासन में किए गए किसी भी बदलाव में पूर्ण सुरक्षा का आश्वासन दिया। अपने जवाब में लॉर्ड मिंटो ने स्पष्ठ कर दिया कि मुसलमानों के लिए सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की स्वीकृति साम्राज्य के लिए उनके द्वारा की गई सेवाओं का पुरस्कार है।[7] मुस्लिम शिष्टमंडल का संगठन उन्हें एक राजनीतिक दल के रुप में परिवर्तित होने की सफल भूमिका थी।

दिसंबर 1906 में मुहम्मडन एजुकेशनल कॉन्फ्रेंस की बैठक ढाका में हो रही थी, तभी इस कॉन्फ्रेंस को ढाका के नवाब की अध्यक्षता में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के नाम से घोषित कर दिया गया। 1908 में आगा खां को मुस्लिम लीग का स्थाई अध्यक्ष बनाया गया। मुस्लिम लीग ने अपना निम्नलिखित लक्ष्य प्रस्तुत किया–

क. भरतीय मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा की भावना कायम रखना,
ख. भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक एवं दूसरे प्रकार के अधिकारों की रक्षा करना और संयमित भाषा के जरिए सरकार के सामने अपनी मांग रखना,
ग. उपरोक्त दोनों उद्देश्यों को बिना नुकसान पहुँचाए मुसलमानों और भारत के अन्य संप्रदायों में मैत्री भावना का प्रचार करना।[8]

1909 के मार्ले–मिंटो सुधार अधिनियम के जरिए मुसलमानों को अपने समुदाय से ही प्रतिनिधि चुनने का पृथक निर्वाचन अधिकार प्राप्त हुआ। 1916 के कांग्रेस–लीग समझौता (लखनऊ समझौता) में प्रांतों के लिए जनसंख्या के आधार पर मुसलमानों के अनुपातिक प्रतिनिधित्व को स्वीकृति प्रदान की गई। केन्द्रीय विधान सभा के संबंध में यह निश्चय किया गया कि निर्वाचन स्थलों में एक–तिहाई स्थान मुसलमानों के लिए सुरक्षित रखे जाएंगे। इसका असर यह हुआ कि

6. ग्रैहम, जी. एफ. आई. : दि लाइफ एंड वर्क्स ऑफ सर सैयद अहमद (1909), पृ. 273 से अवतरण
7. कृष्ण, के. बी. : दि प्रॉब्लम्स ऑफ माइनरिटीज, 1939
8. मेहता, ए. एंड पटवर्धन, ए. : दि कम्यूनल ट्रैंगल इन इंडिया, 1942

शासन के द्वारा आगे जिस प्रतिनिधित्व प्रणाली को कार्यान्वित किया गया, उसका आधार तो कांग्रेस–लीग समझौता को बनाया गया, लेकिन अन्य महत्वपूर्ण सुझावों को लागू करने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

खिलाफत का मुद्दा और असहयोग आंदोलन :

तुर्की के मुद्दे को लेकर भारत में मुसलमानों एक वर्ग ने खिलाफत असंदोलन चलाया। तुर्की के सुल्तान विश्व जगत में मुसलमानों के धार्मिक खलीफा भी थे। प्रथम विश्व युद्ध के बाद तुर्की के ऊपर ब्रिटेन के द्वारा जो अपमानजनक संधियां थोपी जा रही थीं, उससे भारत के मुसलमानों को भी शासन के विरुद्ध एकसूत्र में बंधने का मौका प्राप्त हुआ। खिलाफत के मुद्दे पर आंदोलन चलाने को 1919 में खिलाफत कमिटी का निर्माण हुआ। महात्मा गांधी जो इस वक्त रॉलट बिल के खिलाफ आंदोलन कर रहे थे, खिलाफत के प्रश्न को हिंदू–मुस्लिम एकता के रुप में देख रहे थे। इलाहाबाद में प्रमुख कांग्रेसी नेताओं के साथ खिलाफत कमिटी की जो बैठक हुई, उसमें खिलाफत के प्रश्न पर असहयोग आंदोलन प्रारंभ करने का निश्चय किया गया, जिसकी अध्यक्षता गांधी जी को करनी थी। 1 जनवरी 1921 से अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया गया। यह वर्ष भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का एक नई चेतना लेकर आया, जिससे समाज का हर वर्ग प्रभावित हुआ था। "असहयोग आंदोलन का एक विशिष्ठ पक्ष था हिंदुओं और मुसलमानों के बीच अभुतपूर्व भातृत्व।"[9]

खिलाफत आंदोलन में धर्मांधता के कुछ लक्षण मोपला विद्रोह में दिखे। दक्षिण भारत में मोपला गरीब मुसलमान किसान थे जो ब्रिटिश नीति से लाभान्वित हिंदू नम्बूदरी जमींदार और नायर साहूकार के शोषण के विरुद्ध भड़क उठे। क्रोध और हिंसा के शिकार अधिकतम हिंदू हुए, जिससे हिंदू–मुस्लिम एकता पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा। 1922 में गांधी जी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। खिलाफत के समर्थकों ने इस निर्णय की आलोचना की। वे सदस्य जो खिलाफत के धार्मिक पक्ष से ज्यादा प्रभावित थे, वे कांग्रेस से दूर और सांप्रदायिकता के करीब होते गए।

असहयोग आंदोलन के बाद की घटनाएं :

अब तक हिंदू–मुस्लिम के बीच सद्भाव लगभग समाप्त हो चुका था। इस बीच दोनों समुदायों के समाजिक नेताओं के द्वारा भी वैमनस्य बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ा गया। आर्य समाज और हिंदू महासभा के शुद्धि आंदोलन और संगठन के प्रतिक्रिया में मुसलमानों का तंजीम और तबलीग सांप्रदायिकता को खुराक प्रदान कर रहा था। 1927 में ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन के नियुक्ति की घोषणा की, जिसमें एक भी भारतीय सदस्य नहीं थे। भारत के राजनैतिक दलों ने कमीशन के बहिष्कार का निर्णय लिया। बहिष्कार के निर्णय पर लीग दो गुटों में बंट गया। मुहम्मद सफी के नेतृत्व वाले गुट ने जहां कमीशन के प्रस्ताव का स्वागत किया वहीं जिन्ना गुट ने बहिष्कार का निर्णय लिया।

नेहरु कमिटी रिपोर्ट– साइमन कमिशन की नियुक्ति की घोषणा के पूर्व ही भारत सचिव बर्कनहेड ने भारतीय नेताओं के समक्ष सर्वमान्य संविधान बनाने की चुनौती दी थी। नेहरु कमिटी रिपोर्ट इसी चुनौती का नतीजा था। कांग्रेस ने नेहरु कमिटी रिपोर्ट प्रकाशित किया जिसमें प्रस्तावित संविधान की आधारभुत बातें थी। रिपोर्ट ने पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की आलोचना की। रिपोर्ट में यह भी था कि केंद्रीय और प्रांतीय विधान सभाओं में स्थानों का आरक्षण सारी आबादी में मुसलमानों के अनुपात के आधार पर निर्धारित हो।[10] जिन्ना ने नेहरु रिपोर्ट में कई संसोधन लाने को कहा, जिसमें ये भी था कि केंद्रीय विधान सभा में एक–तिहाई स्थान मुसलमानों के लिए आरक्षित रहे। कांग्रेस ने जिन्ना के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया।

जिन्ना का चौदह सूत्री योजना– नेहरु कमिटी रिपोर्ट के विरोध में जिन्ना ने अपना चौदह सूत्री योजना प्रकाशित किया, जो बाद में लीग के लिए प्रचार आंदोलन का आधार बनी। इस योजना की मुख्य बातों में शामिल थी– प्रांतीय स्वायत्तता के साथ संघीय राज्य की स्थापना; केंद्रीय विधान सभा में एक–तिहाई मुस्लिम प्रतिनिधित्व; केंद्र और राज्य मंत्रिमंडल में एक–तिहाई मुस्लिम मंत्री की व्यवस्था; पृथक निर्वाचन इकाई।

कम्यूनल अवार्ड– 1929 में कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित किया और 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया गया। राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए लॉर्ड इरविन की पहल पर लंदन में गोलमेज सम्मेलन बुलाया गया। सम्मेलन में सांप्रदायिक असहमति सबसे बड़ी चुनौती बनी रही। इन्हीं परिस्थितियों के बीच कम्यूनल अवार्ड की घोषणा की गई। इसमें मुस्लिम, सिख, भारतीय यूरोपियन, भारतीय इसाई, आंग्ल–भारतीय के साथ–साथ हिंदू दलित वर्ग को भी अलग संप्रदाय मानते हुए पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया गया। हालांकि गांधी जी के आमरण अनशन के कारण पूना समझौता (1932) के माध्यम से दलित वर्ग संबंधी सांप्रदायिक निर्णय को हटा लिया गया।

9. रशब्रुक विलियम्स, एल. एफ. : इंडिया इन 1919
10. सीता रमैय्या, पी. : दि हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस, 1935

1937 का चुनाव– अधिनियम 1935 मे प्रावधानों के अनुसार 1937 में प्रांतीय चुनाव हुए, जिसमें कांग्रेस कई प्रांतों में सरकार बनाने में सफल रही। जिन्ना और कई मुस्लिम नेताओं ने कांग्रेस की सरकारों से अपना असंतोष जाहिर किया। 1937 के लख्नऊ अधिवेशन में जिन्ना ने कहा– कांग्रेस के वर्तमान नेतागण खासकर पिछले दस वर्षों में, मुसलमानों को अपने से बहुत ज्यादा अलग करने के लिए जिम्मेदार रहे हैं। इन्होंने जिन छः प्रांतों में बहुमत प्राप्त किया है, वहां ऐसी नीति का अनुसरण किया है जो केवल हिंदू के हित में है।[11] 1939 के विश्व युद्ध में भारत को भी भागीदार बनाए जाने का कांग्रेस ने विरोध किया और मंत्रिमंडलों से त्यागपत्र दे दिया। मुस्लिम लीग ने इसे मुक्ति दिवस के रुप में मनाया।

पाकिस्तान की मांग और विभाजन :

अमरीकी पत्रकार लूई फिशर से गांधी जी ने अपना विचार साझा किया था– "हमलोग दो राष्ट्र नहीं हैं.... भारत में हमारी सम्मिलित संस्कृति है। जब तक यह तीसरी शक्ति, इंग्लैण्ड यहां है, तब तक हमारे सांप्रदायिक विभेद हमें परेशान करते रहेंगे। बहुत पहले उन दिनों के वायसराय लॉर्ड मिंटो ने कहा था कि भारत पर आधिपत्य बनाए रखने के लिए मुसलमानों और हिंदुओं को अलग रखना होगा।"[12] वी. डी. सावरकर ने भारतीय मुसलमानों को अलग राष्ट्र तो माना लेकिन उनके लिए अलग गृहभूमि की मांग को मान्यता नहीं दिया। उन्होंने लिखा है– "हम हिंदूओं के लिए भारत माता अविभाजित है। वैदिक युग से आज तक भारत की एकता स्थापित तथ्य है। इसलिए विभिन्न क्षेत्रों में भारत के बंटवारे की मांग हिंदू कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते।"[13]

जिन्ना ने लीग के कौंसिल की बैठक (1940) में यह घोषणा की कि मुसलमान अब अंग्रेज या कांग्रेस के शासन के अधीन नहीं रहना चाहते और वे स्वतंत्र होना चाहते हैं। मुस्लिम लीग ने 1940 के लाहौर अधिवेशन में दो राष्ट्र के सिद्धांत पर आधारित मुसलमानों के सार्वभौम राष्ट्र की स्थापना यानी पाकिस्तान की मांग का प्रस्ताव पारित किया। इस अधिवेशन में जिन्ना ने यह घोषणा किया कि– भारतीय मुसलमान सिर्फ एक संप्रदाय नहीं है बल्कि अलग राष्ट्र भी है। "भारत की समस्या संप्रदायिक नहीं है बल्कि स्पष्टतः अंतर्राष्ट्रीय है और इस पर इसी रुप में विचार किया जाना चाहिए। अगर ब्रिटिश सरकार सचमुच चाहती है कि इस उपमहाद्वीप के लोग शांति और सुखपूर्वक रहें तो हम सब के लिए एक ही रास्ता है और वह यह कि भारत को स्वायत्तशासी राष्ट्रीय राज्यों में विभक्त कर प्रमुख राष्ट्रों के लिए अलग देशों की व्यवस्था की जाए।[14] पाकिस्तान का सिद्धांत इस योजना पर आधारित था कि मुसलमान अलग राष्ट्र थे। जिन्ना के अनुसार कवि इकबाल ने पाकिस्तान के सिद्धांत का निरुपण किया था। "यह सर्व विदित है कि पाकिस्तान का सिद्धांत हजरत अल्लामा इकबाल के मस्तिष्क की देन है। वे अपनी जनता की अकांक्षाओं के प्रवक्ता थे।"[15] लीग के मद्रास अधिवेशन (1941) में जिन्ना ने कहा– हम किसी भी हालत में अखिल भारतीय संविधान और केंद्र में एक सरकार नहीं चाहते। हम इस उपमहाद्वीप में स्वाधीन राष्ट्र और स्वाधीन राज्य के स्थापना के लिए कृतसंकल्प हैं। आगे आने वाले वर्षों में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्राप्त करने को अपना लक्ष्य निर्धारित किया।

क्रिप्स मिशन (1942)– इसमें भारतीयों के द्वारा चुनी गई संविधान निर्मात्री सभा के माध्यम से भारतीय राज्य संघ के लिए संविधान बनाने का प्रावधान था। साथ ही इसमें यह भी प्रावधान रखा गया था कि यदि कोई प्रांत भारतीय संघ में शामिल नहीं होना चाहेंगे तो ऐसे प्रांतों को अपना अलग संघ बनाने का अवसर होगा। कांग्रेस और लीग ने क्रिप्स प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। हालांकि प्रांतों का भारतीय संघ में शामिल नहीं होने संबंधी प्रावधान को मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान मांग की स्वीकृति के रुप में देखा।

कैबिनेट मिशन (1946)– इसमें विभाजन को नहीं स्वीकारा गया और अखंडित भारत की वकालत की गई। ब्रिटिश भारतीय प्रांतों को तीन समुहों में बांटा गया– एक, हिंदू बहुल प्रांत (मद्रास, बंबई, संयुक्त प्रांत, मध्य प्रांत, बिहार और उड़ीसा); दूसरा, मुस्लिम बहुल प्रांत (पंजाब, सिंध, ब्लूचिस्तान और पश्चिमोत्तर प्रांत); तीसरा, बंगाल एवं आसाम। इन समूहों को अपना–अपना संविधान बनाने की स्वायत्तता दी गई। इसमें संविधान सभा के गठन और एक अंतरिम सरकार के गठन की भी बात कही गई। मुस्लिम लीग ने कैबिनेट मिशन को पक्षपातपूर्ण मानते हुए 16 अगस्त 1946 को "प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस" मनाने का आयोजन किया।

मांउटबेटन योजना (1947)– प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के माध्यम से संवैधानिक मांगों की जगह मुस्लिम लीग ने सड़कों पर उतरने का फैसला किया। परिणाम यह रहा कि सड़कों पर सांप्रदायिक हिंसा चरम् पर पहुंच गई। हत्याकांड को देखते हुए दो ही उपाय थे– ब्रिटेन से सेना बुलाई जाए या फिर शासन का अधिकार भारतीय के हांथों सौंप दी जाए।

---

11. मेहता, ए. एंड पटवर्धन, ए. : दि कम्यूनल ट्रैंगल इन इंडिया, 1942
12. फिशर, लुई : ए. वीक विद गांधी, 1943
13. सावरकर, वी. डी. : के. एम. अशरफ द्वारा संपादित पाकिस्तान(1940) में उल्लेखित
14. जिन्ना, एम. ए. : प्रेसिडेंसियल एड्रेसेज, 1947
15. इंडियाज प्रॉब्लम ऑफ हर कांस्टीच्यूशन (लाहौर रिजोल्यूशन ऑफ मुस्लिम लीग), 1940

एटली की सरकार ने 30 जून 1948 को सत्ता हंस्तांतरण का निश्चय किया। अंतिम गवर्नर जनरल के रुप में मांउटबेटन को भारत भेजा गया। भारत के प्रतिकूल परिस्थितियों को देखते हुए मांउटबेटन ने यह अनुभव किया कि निर्धारित तिथि से पहले ही सत्ता हस्तांतरण की योजना होनी चाहिए।

भारत को दो स्वतंत्र डोमिनियन में विभाजित कर वास्तविक सत्ता का हस्तांतरण 14–15 अगस्त 1947 के मध्य रात्रि में किया गया।

निष्कर्ष :

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भारत में सांप्रदायिकता एक गंभीर समस्या के रुप में उभरी। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान देशवासी जहां एक ओर एकजुट होकर साम्राज्यवादी शासन के खिलाफ संघर्ष कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर धार्मिक पहचान के आधार पर विभाजन की प्रवृत्ति भी तेज हुई। ब्रिटिश सरकार के "फूट डालो और राज करो" की नीति ने हिंदू–मुस्लिम समुदाय के बीच अविश्वास को बढावा दिया। मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा जैसे संगठनों ने धार्मिक हितों को राजनैतिक मंच पर लाकर सामुदायिक संघर्ष की भावना को चुनौती दिया जिससे राष्ट्रीय आंदोलन कमजोर पड़ी। आजादी से तीन दशक पूर्व सांप्रदायिकता इतना गहरा हो चुका था कि 1947 में देश का विभाजन दो डोमिनियन के रुप में हुआ।